दर्शन स्तुति

(प. दौलतरामजी कृत)

www.JainKosh.org

इस स्तुति में 3 मुख्य बातों का वर्णन किया है

1-7	• सच्चे भगवान का स्वरूप
8-11	• अनादिकालीन दुखों का मूल कारण
12–18	• उन दु:खों को नष्ट करने के अन्तरंग और बहिरंग उपाय

www.JainKosh.org

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस विहीन।।1।।

- अर्थ: हे भगवान ! आप सम्पूर्ण लोकालोक को जानते हुए भी अपने अतीन्द्रिय आनंदरूपी रस में लीन हैं।
- आप अरि अर्थात् मोहनीय कर्मरूपी शत्रु, रज अर्थात् धूल के समान ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्म और रहस अर्थात् अंतराय कर्म — इसप्रकार चार घाति कर्मों से सदा रहित हैं - ऐसे जिनेन्द्र भगवान सदा जयवंत रहें।

www.JainKosh.org

जय वीतराग-विज्ञानपूर, जय मोहतिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरजमण्डित अपार।।2।।

- अर्थः हे भगवान! आप वीतराग-विज्ञानता के भंडार हैं,
- मोहरूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान हैं,
- आप अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य रूप अनंतचतुष्टय से सुशोभित हैं, सम्पन्न हैं,
- आपकी जय हो, जय हो...।

www.JainKosh.org

जय परमशांत मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।
भवि भागन वचजोगे वशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय ।।3।।

- आप परम / उत्कृष्टतम शांतमुद्रा से सहित हैं, जो भव्य-जीवों को आत्मानुभूति में कारण होती है ।
- भव्यजीवों के तीव्रतम पुण्योदय से और आपके वचनयोग से होनेवाली आपकी दिव्यध्वनि होती है ।
- जिसे सुनकर भव्यजीवों के विभ्रम अर्थात् मोह, संशय आदि नष्ट हो जाते हैं।

www.JainKosh.org

तुम गुण चिंतत निज-पर विवेक, प्रकटै, विघटैं आपद अनेक।
तुम जगभूषण दूषणविमुक्त, सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त।।4।।

- आपके गुणों के चिंतन से अपने और पराये का भेदज्ञान प्रगट होता है और
- सभी प्रकार की आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।
- आप जगत के आभूषण हैं अर्थात् जगत में सर्वश्रेष्ठ हैं, आपसे जगत की शोभा है।
- आप सभी दोषों से रहित हैं,
- सभी महिमाओं से सम्पन्न हैं और
- सर्वविकल्पों से रहित हैं।

www.JainKosh.org

अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ-अशुभविभाव-अभाव कीन,स्वाभाविक परिणतिमय अछीन।।५।।

अविरुद्ध= विरुद्ध भावों से रहित

पावन= पवित्र

अनूप = जिसकी कोई उपमा न हो

अछिन = अक्षीण , जिसका नाश न हो

www.JainKosh.org

अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर।
मुनिगणधरादि सेवत महंत, नव केवललब्धिरमा धरंत।।६।।

- अष्टादश – 18
- विमुक्त – छुट गए
- धीर – सहन करने वाले
- राजत- विराजमान, सुशोभित
- महंत = महान
- नव केवल लब्धि – केवलज्ञान के समय प्रगट होने वाली 9 लाब्धियाँ
- [illegible]

www.JainKosn.org

18 दोष
भूख
प्यास
बुढापा
रोग
जन्म
मृत्यु
भय
गर्व
राग
द्वेष
मोह
चिंता
रति
निद्रा
विस्मय
मद
स्वेद
खेद

नव लब्धि –

केवल ज्ञान के साथ प्रगट होने वाले क्षायिक भाव

क्षायिक ज्ञान	क्षायिक दर्शन	क्षायिक सुख	क्षायिक सम्यक्त्व	क्षायिक दान
क्षायिक लाभ	क्षायिक भोग	क्षायिक उपभोग	क्षायिक वीर्य	

www.JainKosh.org

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव।
भवसागर में दुख छार वारि, तारन को और न आप टारि।।७।।

- सेय - सेवन करके
- अमेय - अनेक, अनंत
- जांहि – जायेंगे
- सदीव – हमेशा
- भवसागर – भव समुद्र
- छार – खारा
- वारि – जल
- टारी – वारि करने वाला

www.JainKosh.org

यह लखि निजदुखगद हरणकाज, तुम ही निमित्तकारण इलाज।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय।।८।।

- लखि - देखकर
- निजदुःखगद - मुझे जो दुःख मिले हैं
- हरण काज - दूर करने में
- तातैं - इसीलिए
- उचरों - कह रहा हूँ
- चिर - अनंत काल
- लहा [illegible] किये हैं

www.JainKosh.org

मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप,अपनाये विधि-फल पुण्य-पाप।
निज को पर को करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान।।९।।

- अपनपो = अपनापन
- विसरी = भूलकर
- विधि = कर्म
- करता = कर्त्ता
- पिछान = पहिचान कर
- ठान = मान कर

www.JainKosh.org

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि।
तन परिणति में आपो चितार,कबहूँ न अनुभवो स्वपदसार।।१०।।

- भयो – होकर
- धारि – धारण करके
- मृग – हिरण
- वारि – पानी
- तन परिणति – शरीर के परिणमन में
- आपो चितार – अपनापा मानकर
- स्वपदसार – अपने पद का

www.JainKosh.org

तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु नारक नर सुरगति मँझार,भव धर-धर मर्यो अनंत बार।।११।।

- कलेश – संक्लेश
- पाए – प्राप्त किये
- सुरगति – देव गति
- मँझार – में
- मर्यो – मरण किया

www.JainKosh.org

अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द्व,चाख्यो स्वातमरस दुख निकंद।१२।

- काललब्धि = समय
- बलतें= के होने पर
- मिटी = नष्ट हो गये हैं
- द्वंद्व= संकल्प - विकल्प
- निकंद = नष्ट करने वाली

www.JainKosh.org

तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुव चरण साथ।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुव विरद एव।।१३।।

- तातैं = इसीलिए
- बिछुरे = अलग न हो
- गुणगण = गुणों की गिनती करेने में
- छेव = पार / अंत
- विरद = यश

www.JainKosh.org

आतम के अहित विषय-कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन।।१४।।

- परिणति = उपयोग
- सो करो = ऐसा करो
- निजाधीन = स्वाधीन

www.JainKosh.org

मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु हरहु मम मोहताप।।१५।।

- निधि = पूंजी, खजाना
- मुनीश = मुनियों के स्वामी
- कारज = कार्य
- शिव = कल्याण
- हरहु = हरो, नष्ट कर दो
- मम = मेरा
- मोहताप = मिथ्यात्व रूपी ताप

www.JainKosh.org

शशि शांतिकरन तपहरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय।।१६।।

- शशि = चन्द्रमा
- तापहरन = ताप को हराने वाला
- हेत = कारण
- तथा = उसी प्रकार
- पियुष = अमृत

www.JainKosh.org

त्रिभुवन तिहुँ काल मँझार कोय,नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख जलधि उतारन तुम जहाज।१७।

- त्रिभुवन = तीन लोक में
- तिहूँ काल = भूत, वर्तमान और भविष्य काल में
- मँझार = में
- मो उर = मेरे ह्रदय/ मन में
- भयो = हुआ
- जलधि = समुद्र
- उतारन = पार करने में

www.JainKosh.org

(दोहा)

तुम गुणगणमणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
दौल स्वल्पमति किम कहै, नमूँ त्रियोग सँभार।।१८।।

- गुणगण = गुणों के समूह
- गणपति = गणधर देव
- गणत = गिनने में
- पावहिं = पाते है
- स्वल्पमति = अल्पबुद्धि
- किम = किस प्रकार
- त्रियोग = तीन योगों से
- संभार = सावधानी पूर्वक

www.Jainkosh.org